अफ़गानिस्तान में भारत की दुविधाएँ
Indian Dilemmas in Afghanistan

हर्ष वी. पंत
Harsh V. Pant
मार्च March 29, 2010

अफ़गानिस्तान के प्रति भारत की नीति उस क्षेत्र के रणनीतिक परिवेश के अनुरूप तेज़ी से बदलती रहती रही है. जैसे-जैसे अफ़गानिस्तान का खेल आखिरी दौर में पहुँच रहा है,भारत अपने-आपको अधिक से अधिक असहाय-सा महसूस करने लगा है और इसका नुक्सान यह हो रहा है कि अफ़गानिस्तान–पाक में अपने महत्वपूर्ण हितों की रक्षा करने में भी असमर्थ होने लगा है. अफ़गानिस्तान में भारत का हालाँकि यह प्रयास रहा है कि वह ज़्यादा से ज़्यादा पृष्ठभूमि में रहकर ही अपनी भूमिका का निर्वाह करता रहे, लेकिन भारत और उसके नागरिकों पर तालिबान के हमले लगातार बढ़ते जा रहे हैं. इसी साल फ़रवरी में आतंकवादियों ने उन गैस्ट हाउसों पर हमला किया, जहाँ भारतीय अक्सर आया-जाया करते थे. इस हमले में सात भारतीय मारे गए. संदेह है कि ये आतंकवादी पाकिस्तान में बसे लश्करे तोएबा के सदस्य थे. पिछले दो सालों में काबुल स्थित भारतीय दूतावास पर दो बार हमला हो चुका है. अफ़गानिस्तान में भारत के बढ़ते प्रभाव और भारत-अफ़गानिस्तान के बीच गहराते संबंधों के फलस्वरूप और इसके दूरगामी निहितार्थों के मद्देनज़र क्षेत्रीय शक्ति संतुलन बदलने लगा है और इसी की प्रतिक्रियास्वरूप ये हमले नई दिल्ली के लिए चेतावनी हैं. नई दिल्ली यह समझता है कि इन हमलों का मकसद उसे अफ़गानिस्तान से बाहर निकालना है, लेकिन भारत सरकार ने स्पष्ट कर दिया है कि इन तमाम हमलों के बावजूद वह उनके मंसूबों को कामयाब नहीं होने देगा..

ऐसे समय में जब इस क्षेत्र में भारत के नज़रिए से व्यापक भूराजनैतिक परिवेश बिगड़ने लगा है' भारत का यह निरंतर आग्रह बना हुआ है कि चूँकि अफ़गानिस्तान-पाक मामले में "शीघ्र समाधान" का कोई रास्ता नहीं है' अफ़गानिस्तान में पश्चिमी सेनाओं को "तब तक बने रहना चाहिए जब तक आवश्यकता हो". भारतीय राजनय को तब अचानक भारी धक्का लगा जब इस वर्ष के आरंभ में लंदन में आयोजित अफ़गानिस्तान सम्मेलन में भारतीय हितों की अनदेखी की गई. पाकिस्तान ने एक ही झटके में अफ़गानिस्तान के सुरक्षा चक्र में नई दिल्ली की भूमिका को नकार दिया.

जब भारत के विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा ने "अच्छे और खराब तालिबान" में अंतर को मूर्खतापूर्ण बताना चाहा तो वे सम्मेलन के व्यापक मनोभाव से वे पूरी तरह अलग-थलग पड़ गए. पश्चिम ने तो इस बारे में पहले ही मन बना लिया था और यही

कारण है कि उनके लिए किसी भी प्रकार के "अगर" का तो सवाल ही नहीं था. लेकिन कब और कैसे अफ़गानिस्तान से पश्चिमी सेनाएँ बाहर जाएँगी' इस बारे में वाशिंगटन और लंदन में अभी दुविधा बनी हुई है. बहुत उम्मीदों से भरे इस सम्मेलन के कुछ दिन पहले ही अमरीकी सेना के वरिष्ठ कमांडर यह सुझा रहे थे कि तालिबान के साथ शांति-वार्ता जल्द ही शुरू हो सकती है और तालिबान के सदस्यों को काबुल सरकार में शामिल होने का न्योता भी दिया जा सकता है.

इस बात का भी कम महत्व नहीं है कि ब्रिटिश विदेश सचिव डेविड मिलिबैंड ने लंदन में इस बात पर ज़ोर देते हुए कहा था कि अफ़गानिस्तान का युद्ध पहले विश्वयुद्ध से भी ज़्यादा लंबा खिंच गया है.

इसलिए इस युद्ध को "जीतने" के लिए रणनीति बनाने के बजाय सम्मेलन के नेताओं ने निश्चय किया कि अब समय आ गया है जब हमें तालिबान के "उदार" वर्ग को अपने साथ लेकर काबुल की सत्ता में उन्हें भागीदार भी बनाना होगा. लगता है कि पाकिस्तान ने पश्चिम के नेताओं को यह भरोसा भी दिलाया कि पाकिस्तान तालिबान के साथ समझौते के लिए मध्यस्थता भी कर सकता है. पाकिस्तान अफ़गानिस्तान में अपने तेज़ी से घटते प्रभाव को फिर से बढ़ाने की कोशिश में लगा है और चाहता है कि पश्चिम भारत के साथ उसके मसले को और गंभीरता से ले. मर्जा हमले में सैनिक कामयाबी के बाद ओबामा प्रशासन भी तालिबान के एक वर्ग के साथ मज़बूत स्थिति में रहते हुए ही वार्ता शुरू करने पर विचार कर रहा है' भले ही इसका यह अर्थ ही क्यों न निकाला जाए कि उन्होंने काबुल में पाकिस्तानी सेना के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है. दूसरी ओर लंदन में भारत की राजनयिक पराजय के कारण दिल्ली को अफ़गानिस्तान-पाक नीति पर पुनर्विचार करने के लिए विवश कर दिया है. इस दिशा में पहला कदम रहा है पाकिस्तान के साथ वार्ता की शुरूआत' भले ही इन वार्ताओं से निकट भविष्य में कोई ठोस नतीजा न निकले'लेकिन अमरीका इस्लामाबाद पर वार्ता के लिए दबाव बनाए रखेगा. पाकिस्तान के साथ वार्ता के लिए भले ही भारत के अंदर कितना ही रोष क्यों न हो' फिर भी भारत सरकार ने वार्ता जारी रखने का निश्चय किया है'क्योंकि भारत को लगता है कि इससे यह मान लिया जाएगा कि अफ़गानिस्तान में पश्चिम के प्रयासों में काफ़ी स्थिरता आ सकती है. हालाँकि इसकी संभावना बहुत कम है क्योंकि पश्चिम की चिंता केवल यही है कि अफ़गानिस्तान से बाहर निकलने का कोई सम्मानजनक फ़ॉर्मूला ढूँढा जाए और इस लक्ष्य की प्राप्ति में पाकिस्तान की भूमिका प्रमुख हो सकती है.·

भारत अफ़गानिस्तान में अपने लिए कोई रणनीतिक भूमिका तलाशने में लगा है और पिछले कुछ वर्षों में यह भूमिका भी सिकुड़ती रही है. सितंबर 11,2001 की घटना के फलस्वरूप अफ़गानिस्तान में अमरीकी सेना भेजने के बाद से ही भारत

अफ़गानिस्तान-पाक पर अपनी कोई स्पष्ट नीति बनाने में विफल रहा है और नई दिल्ली इस क्षेत्र में पश्चिम और विशेषकर पाकिस्तान की गतिविधियों के इर्द-गिर्द ही अपनी नीति का ताना-बाना बुनता रहा है. भारत में अफ़गानिस्तान के वाद-विवाद में दो पक्ष हैं.एक पक्ष के अनुसार कुछ लोगों का कहना है कि हाल के झटके के बावजूद भारत को अफ़गानिस्तान-पाक में अपने हितों की रक्षा के लिए अमरीका पर निर्भर रहना चाहिए. उनका मानना है कि भारत और ओबामा में मूलभूत समानता है और ये दोनों ही देश पाकिस्तान को अफ़गानिस्तान की असुरक्षा का मूल कारण मानते हैं और यह सुझाते हैं कि विश्व को एक साथ मिलकर पाकिस्तान की राजनीतिक अस्थिरता का इलाज करना होगा. पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान का सीमा प्रदेश ही विश्व शांति और सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती है और इस्लामाबाद इसका समाधान नहीं' बल्कि स्वयं समस्या का ही एक भाग है. यदि भारत यह समझ ले तो अफ़गानिस्तान-पाक के प्रबंधन की प्रक्रिया में अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी के साथ शामिल हो सकता है. इसी विचारधारा के मद्देनज़र अमरीका ने दक्षिण पूर्वेशिया के संदर्भ में अपनी परंपरागत नीति में आमूल परिवर्तन कर दिया है. इसलिए भारत यदि अमरीका के साथ मिलकर आतंकवाद विरोधी रणनीति में समन्वय करे तो अपने हितों की बेहतर रक्षा कर सकता है और इससे अमरीका को यह स्वीकार कराया जा सकता है कि पाकिस्तान के पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं में परस्पर संबंध हैं. इस दृष्टि से भारत को भी पाकिस्तान के इस भय को निराधार सिद्ध करने का अवसर मिल जाएगा कि भारत उसके पश्चिमी सीमांत पर दखलंदाजी कर रहा है और इस बारे में पाकिस्तानी सेना से संपर्क साधने में भी हिचकिचाना नहीं चाहिए.

इस वाद-विवाद का दूसरा पक्ष भी है' जो अफ़गानी आग में अपने हितों की रक्षा के लिए भारत की अमरीका पर लगातार निर्भरता के कारण बहुत व्याकुल है. उनके तर्क के अनुसार अमरीका और अफ़गानिस्तान-पाक के बीच कुछ मूलभूत अंतर उभर आया है. ओबामा प्रशासन अफ़गानिस्तान¯पाक की अपनी प्राथमिकताओं के निर्धारण में भारतीय हितों की बहुत ही व्यवस्थित रूप में उपेक्षा करता रहा है. एक ओर तो वह अफ़गानिस्तान में पाकिस्तान को नाराज़ न करने के भय से भारत को आगे बढ़कर सक्रिय भूमिका के निर्वाह के लिए निरुत्साहित करता रहता है और दूसरी ओर पाकिस्तान को भारतीय चिंताओं के प्रति गंभीर रुख अपनाने के लिए मनाने में भी विफल रहा है. पश्चिम ने कुछ हद तक एक प्रकार से विजय का सेहरा अपने सिर पर बाँधने के लिए भी पाकिस्तान के सहयोग से "अच्छे" तालिबानों को मनाने का निर्णय किया है.· इससे इस क्षेत्र में रणनीतिक गतिविधियों में पाकिस्तान की केंद्रीय भूमिका को बल मिलेगा और यह भारत को काफ़ी नागवार गुज़रेगा. ऐसी रणनीति अपनाकर जिससे अफ़गानिस्तान में राज्य की संरचना में पाकिस्तान की अग्रणी भूमिका सुनिश्चित हो सकती है' पश्चिम इस क्षेत्र में भावी विद्रोह के बीज बो रहा है.

अमरीका की इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं है कि अफ़गानिस्तान में कौन राज करता है. वह तो बस यह सुनिश्चित करना चाहता है कि अफ़गानी भूमि का उपयोग अमरीका पर हमले के लिए न किया जाए.लेकिन भारत के लिए यह चिंता का विषय है. तालिबान ¯ भले हों या बुरे- बुनियादी रूप में भारत के खिलाफ़ हैं. अफ़गान राज्य की स्थापना और उदार पाकिस्तान के लक्ष्य को छोड़ देने से भारतीय सुरक्षा पर ज़्यादा बोझ पड़ जाएगा. ऐसे रणनीतिक परिवेश में अपने हितों की रक्षा के लिए भारत को चाहिए कि वह अफ़गानी सेनाओं को प्रशिक्षित करने में तेज़ी लाए' रूस और ईरान जैसे देशों के साथ समन्वय करे और अफ़गानी समाज के सभी वर्गों के लोगों तक अपनी पहुँच बनाने का प्रयास करे. भले ही पश्चिम के लिए कितनी भी दिक्कत हो' भारत को अफ़गानिस्तान में मात्र विकास कार्यों तक सीमित न रहते हुए सैनिक क्षेत्र में भी अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह करना चाहिए.

इस वादविवाद के मुद्दों को भारत किस प्रकार अपनाता है उससे इस क्षेत्र में और उससे बाहर भी भारत की छवि पर गहरा प्रभाव पड़ेगा. अंततः अपने पड़ोस में अस्थिरता से निपटने में भारत की रणनीतिक क्षमता के विश्लेषण से ही यह तय होगा कि एक महत्वपूर्ण वैश्विक महाशक्ति के रूप में भारत का उदय होगा या नहीं. क्षेत्रीय और वैश्विक शक्ति के रूप में उभरते भारत के लिए अफ़गानिस्तान एक जटिल उदाहरण सिद्ध होगा.

हर्ष वी. पंत लंदन के किंग्स कॉलेज में रक्षा अध्ययन विभाग में लेक्चरर हैं और किंग के विज्ञान और सुरक्षा अध्ययन केंद्र में ऐसोसिएट हैं. वे बेंगलोर के भारतीय प्रबंध संस्थान में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर भी रहे हैं. वे CASI *(कैसी) विंटर* 2010 *के विज़िटिंग स्कॉलर भी रहे हैं.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>